International Journal of Leading Research Publication (IJLRP)

E-ISSN: 2582-8010 ● Website: www.ijlrp.com ● Email: editor@ijlrp.com

धातु शिल्प का अद्भुत नमूना बैतूल जिले की भरेवाकला

शोधकर्ता - पुष्पादेवी साहू

सारांश –

इस शोध पत्र मे हम बैतूल जिले के टिगरिया गांव में कला और संस्कृति का विकास मुख्य रूप से भरैवा शिल्प कला का अध्ययन किया है। ढोकरा एक प्राचीन अलौह धातु ढलाई तकनीक है जिसमें मोम की लुप्त विधि का उपयोग किया जाता है। यह शिल्प न केवल एक हस्तकला है बल्कि गोंड जनजातियों की सांस्कृतिक और धार्मिक पहचान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। ढोकरा की कलाकृतियां केवल सजावटी वस्तुएं नहीं होतीं। बल्कि इनका गहरा सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व होता है। इनका उपयोग विवाह समारोहों धार्मिक अनुष्ठानों और जनजातीय देवी–देवताओं के लिए होता है। यह शिल्प प्राकृतिक मोम, गोंद, मिट्टी और गाय के गोबर के मिश्रण से बनाया जाता है, जिसमें जटिल डिजाइन और रूपांकन होते हैं। इसकी हस्तनिर्मित और देहाती सुंदरता प्रत्येक टुकड़े को अनूठा बनाती है । परंपरागत रूप से अनुष्ठानों के लिए वस्तुओं को बनाने वाले कारीगरों ने समय के साथ आधुनिक बाजार की मांग के अनुसार नए और आकर्षक डिजाइन विकसित किए हैं । इससे कला का संरक्षण सुनिश्चित हुआ है और कारीगरों को आजीविका का साधन मिला है। मध्य प्रदेश हस्तशिल्प विकास निगम जैसी संस्थाओं ने इस कला को पुनर्जीवित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने कारीगरों को बाजार से जोड़ा है और ढोकरा को स्थानीय, राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर बढ़ावा दिया है।

मूलशब्द - कला, मोम, स्थानीय, जनजाति, बैतूल, ढोकरा, भरैवा, देवी–देवताओं, पुनर्जीवित

प्रस्तावना -

भारत के हृदयांचल में मध्यप्रदेश की सतपुड़ा की पहाड़ियों के बीच स्थित बैतूल जिला कला और संस्कृति की दृष्टि से प्राचीन काल से ही पारंपरिक पद्धति से धातु शिल्प निर्माण में अग्रणी रहा है। यहां प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा, कला एवं संस्कृति और धर्मों की गौरवशाली परंपरा है। हड़प्पा सभ्यता में शिल्प कला, जिसमें कांसे

की मूर्ति ''लुप्त मोम तकनीक'' से बनायी जाती थी। मोहन जोदड़ो की कांसे की नर्तकी लड़की, कालीबंगा का कांसे का बैल विश्व की सबसे प्राचीन मूर्ति है। त्रिभंग नृत्य मुद्रा में खड़ी केवल आभूषण पहने हुए चार इंच की मूर्ति जिसमें बाएं हाथ में चूड़िया तथा दाहिने हाथ पर कंगन और ताबीज पहने हुए है। इसी प्रकार टेराकोटा मूर्तिया बनाने के लिए पकी हुई मिट्टी का उपयोग होता था। मातृदेवी की मूर्ति में उन्नत कण्ठहार से सुसज्जित एक खड़ी महिला की मूर्ति है जिसकी पूजा उर्वरता और समृद्धि के लिए की जाती थी।

विलुप्त होती जा रही शिल्प कला का संरक्षण और संवर्धन बैतूल जिले के टिगरिया ग्राम में बागमारे परिवार द्वारा ग्राम लापाझिरी, कढ़ाई, जामठी, भारतभारती, टिकारी के मूल निवासियों के साथ मिलकर किया जा रहा है।

➢ कला का विकास

3000 वर्ष ई.पू. पहले लुप्त मोम ढलाई, तापन या घन ताड़न पद्धति से कांसे की मूर्ति बनाई जाती थी, ढलाई कला का सुस्थापित उद्योग या मानव निर्मित शिल्पकृतियों में तांबे और जस्ते को मिलाकर पीतल का उपयोग प्रारंभ हुआ। तांबे और जस्ते को चारकोल के साथ एक बंद क्रुसिबल में 1000c तक गर्म किया जाता था। यूनानियों के भारत में आने से पहले पीतल की शिल्पकृतिया लोथल से प्राप्त हुई है। जिंकयुक्त ताम्र अयस्क 6वीं, 7वीं शताब्दी में पीतल क्रांति पूर्ण रूपेण विकसित थी और उस काल में पीतल की अनेक वस्तुएं बनायी गयी जो पीतल प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में श्रेष्ठ उदाहरण है। बैतूल जिले में मुख्यतः गोंड, कोरकू वनवासी रहते है। गोंडो की एक उपजनजाति भरेवास भी है। विवाह के समय दूल्हे की कटार, मोर चिमनी, वीर कंगन इस समाज की रीति रिवाज से जुड़ा हुआ है। अपनी सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक जरूरतों को पूरा करने के लिए पीतल प्रौद्योगिकी की कला विकसित की और इसमें महारत हासिल करके कलाकृतियां बनाना प्रारंभ किया। पीड़ी दर पीड़ी इस ललित कला को सीखा और सम्प्रेष्ण भी किया। सिन्धु सभ्यता के विनाश के बाद कई क्षेत्रों में इसके अवशेष फैले जिससे उनकी संस्कृति, रीतिरिवाज और शिल्पकला भी दूर–दूर तक बिखर गयी।

गुप्तकाल के ''शिल्पा शास्त्र'' विष्णु संहिता में मोम की मॉडलिंग पद्धति, संस्कृत ग्रन्थ ''मनसरा शिल्पा'' मदुचिष्ट विधानम या लास्ट वैक्स मेथड शीर्षक के अंतर्गत मोम से मूर्तियों की ढलाई की उन्नत कला का उल्लेख

है। कल्याणी के चालुक्य, राजा भीलोकभल्ला सोमेश्वर द्वारा लिखे ''मान सोलम'' में धातु शिल्प विधि का उल्लेख है। ये सभी दस्तावेज भरैवा कला की प्राचीनता को प्रमाणित करते है।

भरैवा कला खोई हुई मोम तकनीक से धातु शिल्प का निर्माण करने की पद्धति है, जो हड़प्पा के विनाश के बाद वहां से विस्थापित हुए, वनवासी जो अलग अलग प्रदेशों में चले गये विविध क्षेत्रों में स्थानीय नाम से बनाई जाने लगी। बैतूल में गोंड, कोरकू, भिलाला,परधान, भरेवा, टिगरिया नाम से जाना जाने लगा। यह धातु शिल्प पारंपरिक और देशी लोक रूपांकनों के आधार पर बनाते थे। वर्तमान में नवीन आधुनिक रूपाकनों, आदिम सादगी, आकर्षक, कला के मजबूत एवं कलाकृतियां में निहित लोक रीति रिवाजों, परंपराओं की परतों और ऐतिहासिक प्रभावों की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इसमें रचनात्मक सोच, सटीकता से देहाती, सादगी आकर्षक और लोक रूपांकनों और विशिष्टों बनावट के प्रभावों के कारण अद्वितीय है। धातुकला कृति में मुख्यतः भगवान बुद्ध, पक्षी, कलात्मक दीये, मोर चिमनी, खंजर, वीरकंगन, हिन्दु रीति रिवाजों की पूजा में काम आने वाली वस्तुंए, दीवार पर लटकने वाले कलात्मक कटोरे आदि। इनमें आदिम संस्कृति और लोक परंपराओं का गहरा चिंतन परिलक्षित होता है।

भरैवा धातु शिल्प में प्रयुक्त होने वाली कच्ची सामग्री में तेल, मोम, बल्हड़ पेड़ के पत्ते, ब्रास स्क्रैप, कंडा (उपला), सुरखी, चावल/गेहूं का भूसा, रेत, पानी, गाय का गोबर, आग, कोयला, लोहे के वायर, कीले आदि का उपयोग होता है। इसमें उपयोग किये जाने वाले टूल्स (औजार) उपकरण स्वंय से हस्त निर्मित होते है, जैसे लकड़ी या पत्थर का समतल चबूतरा, हत्था, कैंची कचनी, पटरी, तराजू खदई, महीन कपड़ा, पिचकारी (थस्सा), मटका, मटकी, हांडी, एविल या रेल लाइन का टुकड़ा, भट्टी, धौकनी, घड़िया (ग्रेफाइट क्रसिबल), संसी, चिमटा (पिंचर्स), धरिया, धरिया कैप, हथौड़ा, छेनी, हेक्सा, फाइल्स, ग्राइंडर, क्लीनिंग टूल्स, कटर, उपरोक्त 24 औजारों और 13 सामग्री का उपयोग करके 21 चरणों में टिगरिया कलाकृति बनकर तैयार होती है।

- **चरणों का विवरण निम्नानुसार है–**

1. मिट्टी बनाना– मिट्टी को गेहूं और चावल की भूसी के साथ पानी में मिलाकर बनाना।

2. गाभा बनाना– ले आउट के अनुसार कोर, संचल, स्ट्रक्चर बनाते है।

3. गाभा सुखाना– सुलगते हुए कंडे में सुखाते है।

4. रगड़ना– सैंडपेपर से रगड़कर चिकना करते है।

5. कोटिंग– हरी बीन के पत्तों का घोल सतह पर लगाते है।

6. मोम धागा बनाना– मोम को मिश्रित करके एक पिचकारी में भरकर मोम धागे बनाते है।

7. मोम तरल कोटिंग– गाभा को तरल मोम से लेपित किया जाता है।

8. वैक्स काइलिंग–मोम के तारों को गाभा के चारों तरफ कुंडलित किया जाता है।

9. क्ले और चैनल फॉर्मेशन–रेतीली मिट्टी में पानी मिलाकर मोम की सतह को ढक दिया जाता है।

10. क्ले मोल्ड सुखाना– सांचे को लकड़ी के आग या धूप में अच्छी तरह सुखाया जाता है।

11. मोल्ड फॉर्मेशन– मिट्टी और चारकोल का भुरभुरा चूर्ण पानी में मिलाकर सांचे पर दूसरी परत चढ़ाते है।

12. पिचिंग प्रक्रिया– लोहे की कीलों को हथौड़े से मार दिया जाता है जिससे मोम पिघलकर अंदर के सांचे (गाभे) और बाहरी सांचे के बीच एक गुहा बन जाती है।

13. आयरन वायरिंग बाइडिंग– मिट्टी की पतली सतह गोल्ड सतह पर लगायी जाती है। ताकि हीटिंग के दौरान क्रेक न हो।

14. डी– मोल्डिंग– सूखे मोल्ड को 800 c तक गर्म किया जाता है। जिससे मोम पिघल जाता है और महीन केविटी बन जाती है।

15. कास्टिंग क्रिया– भट्टी में धरिया को रख देते है और पुराने पीतल के टुकड़े भर देते है और 1100 c तक पिघलाते है। धातु के गंदे अपशिष्ट को हटाने के लिए बोरेक्स साल्ट/सुहागा डालते है।

16. मोल्ड कूलिंग– मोल्ड को 2–3 घंटे ठंडा होने के लिए छोड़ दिया जाता है।

17. पीतल वेल्डिंग और ब्रेजिंग, अतिरिक्त पदार्थ हटाना– रफ बिट्स को फाइल्स से काट दिया जाता है तथा अधूरी कलाकृति के टुकड़ों को काट काटकर अलग से जोड़कर नई कलाकृति बना लेते है।

18. फाइलिंग– डिजाइन के अनुसार फाइल्स से आकार देते है अपूर्ण भागों की बेल्डिंग भी की जाती है।

19. बफरिंग– बफरिंग मशीन से घिसकर चिकना और चमकदार बनाते है।

20. पॉलिश– धातु कलाकृति पर जमा अशुद्धियां बफिंग पैड व्हील से घिसकर निकाल दी जाती है।

21. अंतिम आकार– रेत से अच्छी तरह रगड़कर जिससे यह और चमकदार हो जाती है।

भरैवा धातु कला

हजारो वर्षों से चली आ रही प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा भरैवा धातु शिल्प कला का संरक्षण और संवर्धन बलदेव बागमारे के द्वारा पुश्तैनी कार्य कलाकृतियों का निर्माण पीढ़ी दर पीढ़ी गोपाल बागमारे (1850 ई. से 1880), टुकाड़ी (1880 ई. से 1940 ई.), रंगलाल बागमारे (1940 ई. से 1984), सुखराम (1935 ई. से 2018), बलदेव (1978 ई. से 2022), विशाल, आकाश, तारा, सुधा उइके, नेहा सेडगे, बेवदेवी अड़माचे आदि के द्वारा प्राचीन परंपरा को जीवित रखते हुए लगभग 80–90 मातृशक्ति सतपुड़ा अंचल के आदिवासी बहुल्य जिले के टिगरिया ग्राम में पीतल की असाधारण धातुशिल्प का निर्माण लगभग 200 वर्षों से किया जा रहा है जो भरैवा कला और संस्कृति की गौरवशाली गाथा सुनाती है और हड़प्पा सभ्यता के कलाकृतियों की जीवनता को प्रमाणित कर विलुप्त होती धातु शिल्प संस्कृति को राष्ट्रीय पटल पर रेखांकित करती है। कुछ लोग भले ही अपनी प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा, कला और संस्कृति से विमुख हो रहे है परन्तु आज भी बैतूल जिले की भरैवा कला लोकजीवन की सादगी और सभ्यता का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संप्रेषण/हस्तांतरण सैकड़ों वर्षों से जारी है।

निष्कर्षः –

भरैवा धातु कला की कलाकृतियों को ढालने की प्राचीन पारंपरिक स्वदेशी लोक–कला तकनीक है, जो औद्योगीकरण से प्रभावित हुए बिना, पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्रगति करती रही, किन्तु आज इसके अस्तित्व पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं। चाहे कितनी भी विपरीत परिस्थितियाँ क्यों न हों, कला अपने संचार का मार्ग और माध्यम खोज ही लेती है, चाहे उसके समर्थक, मार्गदर्शक और सहायक तकनीकें हों या न हों। इस पारंपरिक कला का प्रबल समर्थक होने के नाते, मैं कह सकता हूँ कि आज की नई पीढ़ी न केवल अतीत से जुड़ने, अपनी समृद्ध एवं गौरवशाली प्राचीन संस्कृति, रीति–रिवाजों और पारंपरिक लोक–कलाओं के महत्व को समझने के लिए उत्सुक है, बल्कि इनके संरक्षण और संवर्धन के लिए भी अत्यंत सजग और सतर्क है। वर्तमान बदलते आधुनिक परिवेश में, निस्संदेह, अन्य कला–रूपों की तरह, ''भरैवा कला'' भी आवश्यकतानुसार नई तकनीकों को समाहित करते हुए, परिष्कृत रूप से विकसित और विस्तारित होती रहेगी।

➢ **संदर्भ सूची –**

1. श्रीवास्तव पी.एन., बैतूल, म.प्र. जिला, गजेटियर, संस्कृति विभाग, म.प्र. भोपाल 1971
2. सालिटोरे आर.एन., इन्साइक्लोपीडिया ऑफ भारतीय संस्कृति, स्टरलिंग पब्लिकेशन, नई दिल्ली 1982
3. आर्य रामनिवास, प्राचीन भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, विज्ञान भारती, मुंबई, 2002
4. हेबालकर डॉ शरद , भारतीय संस्कृति का विश्व संचार, सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015
5. सिंघानिया नितिन, भारतीय कला एवं संस्कृति, एम.सी.मेग्रा हिल, चैन्नई, 2015
6. साक्षात्कार, बलदेव बागमारे, ग्राम– टिगरिया, बैतूल, म.प्र.
7- https://share.google/Hw6UZuZBRmv2Wufiz
8. निरंजन, महावर 'छत्तीसगढ़ की शिल्प कला प्रकाशक– राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,